भगवत् स्वरूप के पथपर

श्रीश्रीमाँ सर्वाणी

ईश्वर-कोटि ऋषिगणों का साधना के पथपर एकमात्र लक्ष्य होता है भगवत् स्वरूप में रूपान्तरित होना अथवा भगवत् स्वरूप में प्रतिष्ठित् होना। इस क्षेत्र में ''भगवत् स्वरूप'' कहने से गोलोकाधिपति परम पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण को ही समझना होगा; इसके अलावा श्रीपुरुषोत्तम भगवान से अभिन्न दूसरे और एक रूप, चतुर्भुज बैकुंठाधिपति श्रीहरि नारायण को भी समझा जाता है। ईश्वरकोटि ऋषिगणों को साधना के क्षेत्र में पूर्णयोग की साधना में सर्वप्रथम अर्जित होता है परमशिवत्व। परमशिवत्व हुआ परमब्रह्म स्वरूप के योग पर्याय में नवम भूमि अथवा नवमुंडी का आसन। इस नवम भूमि में परमशिव सत्ता उनकी परमेश्वरी शक्ति सत्ता के साथ एक अटल सामरस्य अवस्था में नित्यस्थित होकर अविच्छेद काल के लिए अवस्थान करती हैं। इस अवस्था में रहते-रहते क्रमशः उनकी द्वैताद्वैत स्थिति परिपक्व हो जाती है एवं वे महाप्राणमय भूमि पर महाकारण जगत् में तब स्वेच्छानुसार आनंद में विचरण कर सकते हैं। महाकारण चेतना में अविरत अवगाहन करते-करते एकदा उनदोनों की हिरण्यतनुसम महाकारण देह का निर्माण हो जाता है। तब महाकारण भूमि पर बैकुंठलोक में स्वेच्छानुसार गमनागमन सम्भव हो पाता है। बैकुंठलोक में ब्रह्मर्षि-महर्षियों का सगुणब्रह्म सनातन के तनुधारी भगवान श्रीहरि नारायण के सान्निध्य प्राप्ति से स्वीय प्रकृतिगत गुणादि-वैषम्य के आधार पर (जिस सत्ता का जैसा स्वभाव व गुण होता है उसी अनुसार सायुज्य लाभ होता है) सर्वप्रथम नित्य भगवान के भक्तरूप में एवं तत्पश्चात् करुणामय भगवान के भक्ति की शक्ति एवं प्रेमभाव के चिन्मय प्रभाव से नित्य भगवत् स्वरूप के सहित सर्व प्रथम सायुज्य और उसके बाद सारूप्य लाभ करने में सक्षम होते है। सायुज्य एवं सारूप्य लाभ से ऋषिगण नित्य ही भगवान के ऐश्वर्य व माधुर्य दोनों के ही अधिकारी होते है। परमशिवत्व लाभ करके सर्वप्रथम ऋषिगण होते है ''ब्रह्मवेत्ता''; ब्रह्मवेत्ता ऋषिगण अनायास ही श्रीभगवान की अनुकम्पा से सायुज्य लाभ करते है। श्रीभगवान के सायुज्य लाभ से वे अतुल अनन्त योगैश्वर्य की महिमा का अधिकार प्राप्त करते हैं। परन्तु तब भी माधुर्य का परिपूर्ण अधिकार लाभ नहीं हो पाता; परवर्ती अवस्था में नित्य भगवान की करुणा से उन्हें सारूप्य लाभ करने पर मिलता है माधुर्य का अधिकार। माधुर्य के अधिकारी होने के बाद गोलोक की रासलीला दर्शन का अधिकार लाभ होता है। भगवान के नित्यलीला दर्शन विलास से ऋषिसत्ता की सम्बोधि उपलब्धि क्रमशः साधन पथ को श्रीकृष्ण सायुज्य में उपनीत कराती है। तब ईश्वरकोटि ऋषि होते हैं भगवान-स्वरूप। भगवान के सारूप्य प्राप्त हो कर वे होते हैं ''भगवत्वेत्ता''। भगवत्वेत्ता रूप में अवस्थान करते-करते एक समय वह ऋषिसत्ता श्रीकृष्ण की इच्छा से श्रीकृष्ण का सारूप्य लाभ करते हैं। नित्य कृष्ण के संग सारूप्य लाभ के पथपर और भी कुछ निगूढ़ विषयादि है जो इसक्षेत्र में कहना निष्प्रयोजनीय है, ऐसा सोचती हूँ। जो भी हो, तब इस ब्रह्मांड में भगवत्लीला में अंशग्रहण करने की शक्ति एवं अधिकार होता है उन ब्रह्मवेत्ता का। इस अवस्था में आरम्भ होती है दूसरी और एक साधना की धारा – वह हुई, नित्य भगवत् स्वरूप के देवता के अंश में, युग के प्रयोजनानुसार इस ब्रह्मांड में सनातन धर्म की रक्षा करने के लिए महा अवतार के रूप में अथवा अवतार रूप में अवतरण एवं भगवत्लीला में मुख्य भूमिका का अंशग्रहण करना। ऐसा होने से इस क्षेत्र में हमसब देख रहें हैं कि किसी भी ईश्वर-कोटि ऋषि के साधना की दो दिशाएँ – एक, ब्रह्मवेत्ता के

रूप में परमशिवत्व अवस्था का अर्जन एवं दूसरा, भगवत्वेत्ता रूप में नित्य सनातन श्रीभगवान के संग सारूप्य लाभ से देवत्व के अवतार रूप में भगवत्लीला में अंशग्रहण जिस प्रकार, ब्रह्मर्षि सनत्कुमार को हम देखते है कि नारायण के अवतार शिव-पार्वती के पुत्र भगवान ''कार्तिकेय'' के रूप में। परन्तु इस ब्रह्मांड में युग के प्रयोजनानुसार किसी भी भगवत्लीला संघटन के पीछे अवश्य ही किसी महान ऋषि का अभिशाप है, यह देखा गया है। इससे अधिक यह कहा जाता है कि नित्य भगवान भी जब इस धरातल पर अवतरित होते है तब भी इसके पीछे कोई न कोई कारण अवश्य ही रहता है, पुराण का इतिहास इसका साक्षी है।

योगवाशिष्ट रामायण के प्रथम अध्याय में यह वर्णित है कि, एक समय राजा अरिष्टनेमि ने वाल्मीकि मुनि से पूछा था – ''हे मुनिवर! राम कौन है? वे बद्ध हैं या मुक्त हैं ?

उनका स्वरूप क्या है?'' प्रत्युत्तर में वाल्मीकि मुनि ने कहा – ''हे राजन्! आप के इष्ट बैकुंठाधिपति भगवान नारायण ने ही निज भक्त प्रदत्त अभिशाप के मर्यादादान-कल्प में ''राम'' रूप में पृथ्वीतल पर अवतीर्ण हो कर कुछ समय के लिए अल्पज्ञ का भान किया था। प्रकृतपक्ष में वे नित्य नारायण ही थे – सिर्फ मर्त्यलीला में नरतनु धारण कर मनुष्योचित आचरण किये थे।'' तब राजा ने पुनः जिज्ञासा किया, ''अभिशाप का कारण क्या है एवं किसने इस तरह अभिशाप दिया था?'' राजा के प्रश्न के उत्तर में महर्षि वाल्मीकि कहने लगे –''एकबार भगवान सनत्कुमार ब्रह्मलोक में आसीन थे उस समय त्रैलोक्याधिपति विष्णु के वहाँ उपस्थित होने पर सृष्टिकर्ता ब्रह्मा एवं सत्यलोक वासियों ने मिलकर उनकी पूजा वंदना व स्तव-स्तुति किया। परन्तु भगवान सनत्कुमार ने त्रैलोक्याधिपति के प्रति किसी भी प्रकार का सम्मान का प्रदर्शन नहीं किया। यह देखकर विष्णु ने उनको कहा, ''हे सनत्कुमार! देख रहा हूँ कि तुम कार्याकार्य विवेकहीन हो – इसलिए मेरे प्रति तुम्हारा ऐसा अज्ञानोचित आचरण है। मैं अभिशाप दे रहा हूँ, तुम स्मरदेव के अवतार 'कार्तिकेय' के रूप में जन्मग्रहण करोगे।'' तब सनत्कुमार ने कहा, ''मैं भी आप को अभिसम्पात कर रहा हूँ कि आप भी कुछ समय के लिए अपनी भगवत्ता एवं सर्वज्ञता को विस्मृत कर मर्त्यजीव की तरह आचरण करेंगे।'' – ब्रह्मशाप अलंघनीय। श्रीरामचन्द्र की अवतारलीला में वे जिस प्रकार पत्नी विरह से कातर हुए थे एवं कुछ समय के लिए उन्हें भगवत्ता का विस्मरण हो गया था, यह मूलतः भगवान सनत्कुमार का ही अभिशाप है, यह स्पष्ट है।

भगवान कार्तिकेय ने महादेव के तेज से जन्मग्रहण किया। तारकासुर वध करने के लिए कार्तिकेय का जन्म हुआ था। ब्रह्मा के वर से मदोन्मत्त तारकासुर ने देवगणों के ऊपर प्रबल अत्याचार करना शुरु किया। तब देवगणों ने ब्रह्मा के निकट गमन किया एवं उनके उपदेशानुसार श्रीमदनदेव के शरणापन्न हुए। दूसरी तरफ मदनदेव के प्रभाव हेतु पार्वती देवी के साथ विहारकाल में महादेव का तेज पृथ्वी पर पतित हुआ। पृथ्वी द्वारा यह धारण करने में अक्षम होने के कारण उसने उस तेज को अग्नि में निक्षिप्त कर दिया। तत्पश्चात् अग्नि ने इस तेज को गंगागर्भ में संचारित किया; किन्तु उसे दीर्घकाल तक धारण करने में असमर्थ होने पर गंगा सुमेरु पर्वत के पार्श्व गंगातीर के शरवन में उसका परित्याग करती हैं। सप्तर्षिगणों में एक वशिष्ठ की स्त्री को अरुन्धती एवं अवशिष्ट अन्य छः ऋषियों की पत्नियों को 'कृत्तिकागण' कहा जाता है। उसी समय छः कृत्तिकाओं ने गंगास्नान करते हुए प्रातःकाल नदीतीरस्थ अग्नि का सेवन किया था एवं उसी अग्नि के तेज से वे गर्भवती हो गई। बाद में उन्होंने उस तेज को हिमालय के शिखर पर परित्याग किया एवं उसी सम्मिलित तेज से एक अद्भुत दिव्य शिशु 'कुमार' का आविर्भाव हुआ। कृत्तिकागण के गर्भ से कुमार का जन्म हुआ था इसीलिए वह दिव्य बालक 'कार्तिकेय' नाम से विख्यात हुआ। कृत्तिकागण ने स्तनदात्री बनकर उनका पालन किया था। शिवपत्नी पार्वतीदेवी ने देवगण के निकट इस विषय से अवगत हो कर कार्तिकेय को अपने पास आनयित किया। महादेव व अग्नि के तेज क्षरित अथवा स्कन्न होकर जन्म हुआ था इसलिए उनका दूसरा नाम है 'स्कंद'।

कार्तिकेय के जन्मवृत्तान्त के सम्बन्ध में विभिन्न पुराणों में विभिन्न प्रकार की कहानियों का उल्लेख है। तन्मध्य से सत्यदृष्टि अवलम्बन पूर्वक वास्तविक रूप में कुछ तथ्यादि यहाँ उद्धृत कर रही हूँ। भगवत्लीला में अन्तर्निहित योगतत्त्व एवं आचरणीय लीला, दोनों ही एक साथ संघटित होती है। इसीलिए उपलब्ध सत्यदृष्टि से ही कार्तिकेय का जन्मवृत्तान्त यहाँ पर लिखा जा रहा है। ये भगवान सनत्कुमार, जिन्होंने कार्तिकेय के अवतार के रूप में सनातन धर्म की रक्षा की थी, ये ही हुए महावतार श्रीश्रीबाबाजी महाराज।

भगवान कार्तिकेय

भगवान कार्तिकेय के जन्मवृत्तान्त के विषय में अन्तर्निहित एक यौगिक अर्थ है। वह है इसप्रकार – महादेव गभीर ध्यान में मग्न होकर निर्विकल्पभाव में समाधि में सदा ही निमग्न रहते हैं – इस कारण वे महायोगीश्वर देवादिदेव हैं। दूसरी तरफ तारकासुर के अत्याचार से त्रिलोक के जर्जरित होने पर तब देवगण मदनदेव, अर्थात् इस सृष्टि के मध्य श्रीकृष्ण की साक्षात् प्रतिभू, जिनको कामदेव कहा जाता है, जिनके प्रभाव से इस ब्रह्मांड के सृष्टि-प्रकरण की धारावाहिकता अक्षुण्ण रहती हैं, उसी मदनदेव के शरणापन्न हुए जिस से मदनवाण के प्रभाव से महादेव का ध्यान भंग होकर सिसृक्षा की इच्छा अन्दर में जागृत होती है एवं तभी महादेव के तेज से भगवान का अवतार कल्प गुण संवलित विग्रह आविर्भूत होता हैं, जो तारकासुर का वध करने में सक्षम होते है। वास्तविक रूप में ऐसा हुआ था। मदन-वाण से महादेव का ध्यान भंग होकर पार्वतीदेवी के सहित विहारकाल में महादेव का महातेज, जो ब्रह्माग्नि सदृश हैं, पृथ्वीतल पर पतित होने पर उस भीषण तेज को पृथ्वी द्वारा धारण न कर सकने पर तब अग्नि में उसे निक्षेप किया था। इस क्षेत्र में 'अग्नि में निक्षिप्त होना' अर्थ से सौरमंडल में निक्षिप्त हुआ ऐसा ही समझना होगा। सौरमंडल के अग्नि में वह तेज निक्षिप्त होने से तब अग्निदेव ने उसे गंगागर्भ में संचारित किया। गंगा की धारा तीनों लोक में प्रवाहित होती है। इसलिए गंगागर्भ में तेज पतित होने से गंगा की धारा सर्वदा स्रोतस्विनी होने के कारण, अधिककाल तक उस तेज को धारण करने में असमर्थ हुई एवं तब गंगा उस तेज को हिमालय के पास गंगातीरस्थ शरवन में परित्याग करती हैं। उसी समय कृत्तिकागण गंगास्नान कर नदीतीरस्थ अग्नि के दर्शन हेतु अग्नि का सेवन किया था एवं उस अग्नि सेवन करने के समय अग्नि का तेज ब्रह्मज्योति के कण के रूप में ब्रह्माणु के आकार धारण कर उनसब के गर्भमध्य प्रविष्ट हो गया, जिसके फल स्वरूप वे गर्भवती हुई। बाद में वे एक समय उसी ब्रह्मज्योति कण रूपी तेज को हिमालय के किसी एक स्थल पर सम्मिलित रूप में परित्याग करती हैं एवं परित्यक्त तेज के ज्योर्तिबिन्दु कण-कण के रूप में समष्टिभूत होकर एकत्रित होने से तब स्वत: उस बिन्दुसम ज्योति:पुंजों का समूह एकत्रित होकर उस से एक अत्यद्भुत दिव्यशिशु 'कुमार' का आविर्भाव हुआ।

श्रीश्रीबाबाजी महाराज

'कुमार' अर्थात् क + उ + म + आ + र द 'क' अर्थ से, क + अ द अव्यक्त भूमि से काल के आदि अवस्था में जिस शक्ति का उद्भव होता है, जिस में 'कलन' रहा है एवं यह परा संवित्मय है 'उ' अर्थ से चिति शक्ति अथवा सत् की चित् शक्ति; 'म' अर्थ से ओंकार अथवा प्रणव रूपी शिव-बिन्दु; 'आ' में है आनन्द या आनन्दांश में एवं 'र' अक्षर से शक्ति समझा जाता है। शक्ति का त्रिरूप है – इच्छा-ज्ञाना-क्रिया; वही 'कुमार' ही हुआ आदि शक्ति का स्वरूप, महावीर्य महाबल महा-महा-शक्ति। हमसब के देहाभ्यंतरस्थ इन्द्रिय-रिपुगणों के प्रतिभू तारकासुर के ताड़ना

से साधक जर्जरित हो जाता है। देहाभ्यंतरस्थ उस तारकासुर का वध करने हेतु हृदय-कमलस्थित नारायण या नारायणी शक्ति को जागृत एवं प्रबुद्ध करना होगा। हृदयस्थित प्रबुद्ध नारायण अथवा नारायणी शक्ति को कुमार या कुमारी शक्ति कहा जाता है। जो परमब्रह्म का आदि स्पंदित प्रवाह है। कृत्तिकागण अर्थात् इस ब्रह्मांड के सप्तभूमि के सप्तगोलक (अर्थात्, भूः, भुवः स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यः) – इसकी सप्तधा शक्ति पुंज। कार्तिकेय के मध्य छः ऋषिका के अभ्यंतरीन षष्ठ गोलक की जो समग्र शक्ति समन्वित थी, उसके ही समष्टिभूत शक्ति चैतन्य के प्रभाव से चिन्मय पंच भौतिक या सप्त भौतिक देह गठित हुआ था ब्रह्मज्योति के समन्वय द्वारा। कार्तिकेय का देह दिव्य के अनुशासन से निर्मित हुआ। कार्तिकेय नारायण के प्रतिभू हैं। नारायण हुए भगवान श्रीकृष्ण के समष्टिभूत वीर्य की ज्योतिरूपी प्रकाशमय दिव्यतनु; जो हैं साक्षात् बलराम के स्वरूप। बलराम सद्गुरु शक्ति हैं। ये सद्गुरु-शक्ति हृद्पद्म में जब शैशावस्था में कुमार के रूप में अवस्थान करती है तभी आत्मा-नारायण सत्ता के वक्षपर धीरे-धीरे जागृत हो उठती है एवं पूर्ण विवेक जागृत की अवस्था में साधक क्रमशः माया-प्रपंच के प्राकृत बंधन से अपने आत्मसत्ता को मुक्त करने में सक्षम होते है। तभी अन्तरस्थित तारकासुर का वध करना सम्भव होता है।

भगवान कार्तिकेय के जन्मवृत्तान्त अनुधावन करने पर देखा जाता है कि उनका जन्म प्रकृतपक्ष में 'अयोनिसम्भव' जन्म है। ये ब्रह्मतेज सम्पन्न ज्योति से सृष्ट हुए हैं। ब्रह्मज्योति से सृष्ट है इसलिए गर्भ से गर्भान्तर में भ्रमण करते ये अवशेष में धरित्री मंडल पर दिव्यतनु धारण कर प्रकट हुए थे एवं ये 'कुमार' अवस्था से ही असीम महाबल सम्पन्न एवं महाज्ञानी थे। यह ही हुआ देव-देह धारण व भगवत्लीला नायक के रूप में सनातन धर्म रक्षक होकर भगवान सनत्कुमार के साधना के अवतारत्व का दूसरा पक्ष।

अयोनिसम्भव देह धारण करने हेतु भी तपस्या की जरूरत पड़ती है। नारायणत्व अवस्था प्राप्त ईश्वरकोटिगणों के भगवत् स्वरूप के पूर्णता के पथपर यह भी साधना की एक विशेषता है। इस सृष्टि में बहु भाव में नाना प्रकार के कौशलादि अवलम्बन करके अयोनिज देह धारण करना सम्भव होता है। (१) भर्गदेव के चिन्मय आदित्य रश्मि का अवलम्बन करते हुए, भगवत् सत्तांश के महाकारण ज्योतिर्मय कण सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा के ध्यानरत अवस्था में मस्तक के आद्या मूला केन्द्र मध्य से, ब्रह्मरंध्र द्वार के भीतर से, कूटस्थ में प्रविष्ट होकर, ब्रह्मदेव के चित्तसंकल्पित रूप के आकार एवं उस अवस्था का भावप्राप्त होते हुए, दिव्य ज्योति सम्पन्न देह धारण कर, सुषुम्ना के पथपर ब्रह्मा के देह में मस्तक-ग्रंथि स्थान के ब्रह्मरंध्र-मध्य छिद्र से प्रकटित होता है सत्यलोक के प्राकृतिक मंडल में। इस तरह श्रीहरि नारायण के अंश में मात्र सनकादि चतुःसन ऋषिगण ही नहीं दूसरे और भी अयोनिसम्भवा सृष्टि को परमपिता ब्रह्माजी ने सृजन किया था, तत्परवर्ती सृष्टिकल्प में। (२) भूमंडल के जन्म प्रकरण में भर्गदेव के चिन्मय आदित्य रश्मि का अवलम्बन करते हुए सुषुम्ना के पथपर ब्रह्मनाड़ी मध्य ब्रह्ममार्ग में भगवत् सत्तांश कण का मातृजठर में प्रविष्ट होना सम्भव है। (३) अनेक दिव्य महात्मागण भगवत् स्वरूप में पूर्णता के पथपर चलने के समय कारण एवं सूक्ष्म लोकादि में अवस्थान करते हुए जगत्-कल्याण साधन करते है। कभी-कभी वे कोइ देह धारण करने के लिए अनेक समय दिव्य भर्गरश्मि अवलम्बन द्वारा सुषुम्नामार्ग में भूमंडल पर विचरण कर सर्वप्रथम अपने माता-पिता का निर्वाचन करते हैं एवं तत्पश्चात् वे माता के कूटस्थ अवलम्बन करते हुए ज्योतिरूप में गर्भस्थ होते हैं।

ईश्वरकोटि के अलावा इस प्रकार अयोनिज देह धारण करने में अन्य कोई सक्षम नहीं होते है। अयोनिज देह का निर्माण ब्रह्मांड सृष्टि में प्राकृत नियम के व्यतिक्रम है। यह सम्पूर्णतया दिव्य के नियम द्वारा संचालित होता है। दिव्य के अनुशासन अनुसार भगवत् स्वरूप के महाइच्छा से इस प्रकार अयोनिसम्भव तनुधारण करना ईश्वरकोटि-सत्ता के पक्ष में सम्भव होता है। जीवकोटि के क्षेत्र में 'अयोनिज', सृष्टि में आविर्भूत होना, अबतक सम्भव नहीं हो पाया। ब्रह्मांड सृष्टि के आदि प्रकरण में महाप्रजापति ब्रह्मा के अयोनिज मानसपुत्रादि की सृष्टि समस्त काल के मध्य ही सृजित हुई थी।

-हिन्दी अनुवाद
मातृचरणाश्रिता श्रीमती ज्योति पारेख